

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी यात्रा-साहित्य में पर्यावरणीय विमर्श

डॉ.रत्नेश कुमार यादव

सहायक आचार्य, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राया-सुचानी बागला, जिला साम्बा, जम्मू-कश्मीर -181143
ई-मेल:ratnesh.hnd@cuajammu.ac.in, मो.9560046944

कमल दीप सिंह

पी.एच.डी.(शोधार्थी) हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राया-सुचानी बागला, जिला साम्बा, जम्मू-कश्मीर -181143

शोध सारांश- हिंदी साहित्य में जिन विमर्शों की शुरुआत हुई, उनमें पर्यावरणीय विमर्श एक महत्वपूर्ण विमर्श है। मानव, चारों ओर से पर्यावरण-प्रकृति से जुड़ा हुआ है। वह प्रकृति से अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को प्राप्त करता है। ऐसे में इन प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का प्रयोग जब संपूर्ण उपयोग कर लेने की दृष्टि से किया जाता है तब पर्यावरण असंतुलन हमारे सामने आता है। इससे ही हम कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ देखते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख हिंदी यात्रा-साहित्य में पर्यावरणीय विमर्श को पेश करता है। हिंदी यात्रा-साहित्यकारों ने अपने वृत्तांतों में पर्यावरण से सम्बंधित विचारों, स्थितियों को सामने रखा है। समाज किस प्रकार प्रकृति और पर्यावरण के प्रति असंवेदनशील बनता जा रहा है। जहाँ उसे प्रकृति से समन्वय बैठकर चलना चाहिए, वह प्रकृति का अति उपभोग कर रहा है। इससे कैसे प्राकृतिक संसाधनों में निरंतर गिरावट आ रही है? प्रकृति के महत्त्व एवं मनुष्य के इसी प्रकार के पर्यावरण से सम्बंधित चिंतन को प्रस्तुत शोधालेख में हिंदी यात्रा-साहित्य के माध्यम से देखा गया है।

बीज शब्द- विमर्श, यात्रा साहित्य, पारिस्थितिकी, सतत, विकास, पर्यावरण साहित्य मानव जीवन का आईना है। साहित्य में हमें मानव जीवन के सभी रसों का समावेश देखने को मिलता है। मानव के हर्ष-विषाद, पीड़ा, सुख-दुःख, अकेलापन, जीवन की विभिन्न समस्याएँ हमें साहित्य में जीवंत रूप में देखने को मिलती हैं। साहित्य का सम्बन्ध कल्पना लोक से लेकर यथार्थ की भूमि पर मानव व्यवहार उसके परिवेश का चिंतन व्यक्त करने से है। हिंदी साहित्य स्वतंत्रता के बाद अपने पुराने विषयों से हटकर नए विषयों की ओर बढ़ा जहाँ साहित्य में शनैः-शनैः विमर्शों का आगमन प्रारम्भ हुआ। विमर्श का सामान्य अर्थ एक चिंतन है जिसमें अक्सर हाशिये पर पड़े जन-समूह, विषयों को मुख्य धारा में लाने का चिंतन व्यक्त होता है। नब्बे के दशक में हुए उदारिकरण के बाद भारत में जो वैश्वीकरण का दौर शुरू हुआ उनके फलस्वरूप कई प्रकार के सामाजिक परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। इसी दौर के साहित्य में विमर्शों को एक प्रमुख स्थान मिला। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श जैसे प्रश्न लेखन के केंद्र में रहे धीरे-धीरे विमर्श में वृद्ध विमर्श, पर्यावरण विमर्श भी साहित्य पटल पर उभरे। साहित्य जिन समकालीन समस्याओं का अंकन करता है उनमें पर्यावरणीय संकट से जुड़ते विश्व, विकास और विनाश की बहस पर चर्चा स्वाभाविक है। इन पर्यावरणीय संकटों से जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को साहित्यकारों ने अनुभवजनित विचारों से शब्दों में ढाला है। हमारे आस-पास का वातावरण जिससे हम घिरे रहते हैं वह पर्यावरण है। नदी, पहाड़, जल, भूमि, वायु आदि इसके भाग हैं। मनुष्य के साथ-साथ सभी प्रकार के जीव-जंतुओं के लिए पर्यावरण का संतुलित होना आवश्यक है। असंतुलन की स्थिति में कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। इसके लिए विश्व स्तर पर कई प्रयास किये जा रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन को

संतुलित करने के लिए कई प्रयास दिखाई देते हैं। इन सब के बावजूद आधुनिक उपभोक्तावादी समय में विकास के नाम पर पर्यावरण को अत्यधिक दोहन हो रहा है। इनका परिणाम हमें आपदाओं में देखने को मिलता है। जहाँ विकास और विनाश के बीच बहस होती है, एक ओर विकास का प्रयास किया जा रहा है जो भारत जैसे देशों के लिए महत्वपूर्ण है, जहाँ विश्व स्तर के पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों को लागू करते हुए विकास का प्रयास किया जा रहा है वहीं अमेरिका जैसे देश जिन्होंने अपने राष्ट्रीय हित के नाम पर 'पेरिस जलवायु समझौते' से स्वयं को अलग कर लिया। इसी प्रकार आधुनिक भूमंडलीकरण के दौर में विकास के नाम पर अंधाधुंध पर्यावरण का हास हो रहा है। साहित्य समाज को व्यक्त करता है। मानव समाज के भावों, समस्याओं को चित्रित करता साहित्य नए दौर की समस्याओं को व्यक्त करता है। हिंदी साहित्य में देखें तो साहित्य की सभी विधाओं में पर्यावरण विमर्श देखने को मिलता है। प्रस्तुत शोध-आलेख में यात्रा-साहित्य को केंद्र में रखकर पर्यावरण विमर्श का अवलोकन किया गया है। यात्रा-साहित्य एक यथार्थवादी साहित्य विधा है। यह विधा प्रकृति से सम्बंधित है। प्रकृति का घुमक्कड़ी द्वारा किया जाने वाला अवलोकन यात्रा-साहित्य होता है। चूँकि यह विधा प्रकृति के सबसे अधिक समीप साहित्य विधा है, अतः इसमें प्रकृति-प्रेम, उसके दोहन के प्रति चिंतित होना स्वाभाविक रूप में दर्ज होता है। हिंदी में भारतेदुयुग से इस विधा का सूत्रपात होता है जो राहुल सांकृत्यायन के समय में विशेष रूप में फूलती-फूलती हुई साहित्य विधा का स्थान प्राप्त करती है।

भारत प्राकृतिक रूप से विविधता से भरा हुआ है। यहाँ सदैव हिम से भरे हिमालय पर्वत श्रृंखलाएँ हैं तो गंगा-यमुना का विशालकाय मैदानी क्षेत्र है। एक ओर थार का मरुस्थल है तो दूसरी ओर पूर्वोत्तर के वन हैं, दक्षिण का समुद्री क्षेत्र है। इतनी अधिक विविधता वाला भारत देश प्राकृतिक रूप से संपन्न है। यह संसाधन सदैव बने रहे इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसका यथोचित उपभोग किया जाए। विकास की अंधी दौर में इसका अंधाधुंध दोहन हमारे पर्यावरण को हानि पहुँचा रहा है। विमर्श एक चिंतन प्रस्तुत करता है। वह समाधान के स्थान पर अक्सर विचार को पेश करते हुए पाठक के सम्मुख रखता है। हिंदी का यात्रा-साहित्य पर्यावरण से सम्बंधित सभी प्रकार के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। पर्यावरण के बचाव और संरक्षण के लिए जागरूकता की आवश्यकता है। भारत में इस सम्बन्ध में कई कार्यक्रम चलाये गये। टेलीविजन एवं अन्य सम्प्रेषण माध्यमों के द्वारा पर्यावरण को साफ़ रखने की बात जनमानस तक पहुँचाई गई। वर्ष 2014 में शुरू किया गया 'स्वच्छभारत अभियान' इसी प्रकार का एक उदाहरण है। इस प्रकार जागरूकता की हमारे समाज को कितनी आवश्यकता है, यह साहित्य के अध्ययन से समझ आता है। नीरज मुसाफ़िर अपने यात्रा-साहित्य 'सुनो लद्दाख' में एक ऐसी स्थिति का चित्रण करते हैं जहाँ वे पाते हैं कि एक विदेशी सैलानी और भारतीय सैलानी की व्यवहार में

कितना अन्तर है। जहाँ विदेशी सैलानी कूड़ा एकत्रित कर उसे कूड़ेदान में डालता दिखाई देता है वहीं अधिकतर भारतीय सैलानी ऐसा नहीं करते। नीरज मुसाफ़िर लिखते हैं- “वह यहाँ इधर-उधर पड़े कूड़े को एक जगह इकट्ठा कर रहा था। मैं और विधान शर्मिदा हो गये कि हम लोग इतनी अच्छी जगहों पर कूड़ा फैला देते हैं और ये विदेशी दूर देश से आकर कूड़े को एक जगह इकट्ठा कर रहे हैं।...कृपया इसे अपनी आदत बना लीजिए कि कहीं भी कचरा इधर-उधर नहीं फैलाना है। यह एक अच्छी आदत है।”¹ पहाड़ी क्षेत्र घुमने का प्रमुख स्थान है इन क्षेत्रों में प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोग घुमने आते हैं। पहाड़ जिनको आकर्षित करते हैं वे पहाड़ पर चले आते हैं। लाखों की संख्या में आने वाले लोगों में कितने ऐसे हैं जो इस कर्तव्य को समझते हैं कि आप जहाँ घूम-फिर रहे हैं वहाँ का पारिस्थितिकी तंत्र किस तरह प्रभावित हो रहा है। यह देखने-समझने का विषय है कि यह प्रभाव वहाँ के लोगों और पर्यावरण को कैसे प्रभावित करता है। जब कोई अन्य क्षेत्र का व्यक्ति पहाड़ों पर जाता है तो वह अपने साथ अपनी जीवन शैली को भी ले जाता है। इसी प्रकार पहाड़ का निवासी कैसे अपने पर्यावरण को हानि पहुँचा रहा है, जिसके दूरगामी परिणाम सामने आते हैं। इसका विवरण- अज्ञेय अपने यात्रा-वृत्तांत ‘अरे यायावर रहेगा याद’ में देते हैं “पहाड़ों पर हम सभ्य लोगों की कृपा से जो कुछ हो रहा है, उस की माँग है कि हम परिस्थिति की जाँच करें केवल पर्वतीय प्रदेश की नहीं, अपनी परिस्थिति की जाँच करें। सैर के लिए पर्वतों में गया हुआ सभ्य सामाजिक मानव अपना अधःपतन और गंदगी वहाँ भी बिखेर आया है...हम लोगों ने भी पहाड़ों की पुण्य-भूमि पर पतन और रोग और मृत्यु की गहरी रेखा खींच दी है।”²

हिमालयी क्षेत्रों में पर्यावरण हानि का एक दुष्परिणाम उन क्षेत्रों में सदियों से बहने वाले नदी, झीलें आदि के सूखने के रूप में हमारे सामने है। जलवायु में हो रहे बदलाव के चलते कई जल-स्रोत सूख रहे हैं, हिमालय में जमीं बर्फ पिघल रही है, जिससे वहाँ का पारिस्थितिकी तंत्र बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। इस दोहन के चलते कई तरह की आपदाएँ सामने आ रही हैं। बाढ़ से लेकर सूखा, भू-स्खलन पहाड़ों का टटना जैसी समस्याएँ रोज समाचार-पत्रों में देखी जा सकती हैं। पहाड़ जहाँ जल के कई प्राकृतिक स्रोत होते हैं, वे सूख रहे हैं। झीलों के आस-पास बे-लगाम पर्यटन के चलते उसके दुष्परिणाम हैं कि वहाँ का जल-स्तर कम हो रहा है। सारे प्राकृतिक संसाधनों को वस्तुओं के समान बेचा जा रहा है। “नैनीताल की झील सूखने लगी है। देखकर दुःख भी हुआ। पर्यावरणविद और अन्य जानकार कहते हैं कि अत्यधिक दोहन से यह झील सूख रही है। पानी के स्रोते सूख रहे हैं, दोहन चल रहा है।”³

भारतीय समाज एक प्रकृति पूजक समाज रहा है। प्रकृति को यहाँ देवताओं के रूप में पूजा जाता है। यहाँ के मानव समाज में प्रकृति को एक स्थान दिया है जहाँ वे अपने को उससे कम रखते हैं। प्रकृति मानव का भरण-पोषण करती आई है। मानव इसके बिना अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकता है। भारतीय समाज पर्यावरण की दृष्टि से इतना सजग रहा है कि इसने नदियों को माँ की संज्ञा दी है। समय के साथ औद्योगिक युग में जैसे-जैसे उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला यह विचार पिछड़ा माना जाने लगा। इसके प्रति एक ही दृष्टि उत्पन्न की गई। प्रकृति पूजक यह समाज आज उसी बदलाव के चलते अंधाधुंध उसका दोहन कर रहा है। इस दोहन की कोई सीमा नहीं है। यह उपयोग करने और छोड़ देने वाली वस्तु के समान हो गया है। प्रकृति एक ऐसा संसाधन है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलता है। आज की पीढ़ी जिस प्रकार से प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग कर रही है उससे यह संभव है कि आने वाली पीढ़ी इस प्रकृति से न जुड़ पाए अथवा यह उसे उस रूप में

न मिले जैसे उसे मिलनी चाहिए। इसलिए आवश्यक है कि विकास एक सतत प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाए। पर्यावरण के संसाधनों का प्रयोग ज़रूरत के हिसाब से किया जाए, न कि उपभोक्ता के रूप में। जैसा कि महात्मा गाँधी ने कहा है ‘पृथ्वी के पास सभी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन हैं, लेकिन एक व्यक्ति के लालच को पूरा करने के लिए भी पर्याप्त नहीं है।’ यह लालच सतत विकास की अवधारणा को न समझ कर उसे आज ही प्रयोग कर लेने का विचार है। अजय सोडानी इस दोहन के विषय में लिखते हैं। कैसे प्रकृति का दोहन हो रहा है? लोग साफ़-सफाई को केवल घर तक सीमित रखते हैं। “उफ़ कैसे बलात्कारी लोग थे वे जो प्रकृति की बेदाग़ गोद में अपना पाप छोड़कर चले गए। हम हैं ही कुछ ऐसे कि सफाई की हमारी परिभाषा हमको सिर्फ स्वयं के आँगन की साफ़-सफाई तक ही सीमित है।”⁴

भारत में आज भी ऐसे कई क्षेत्र हैं जो पिछड़े हुए हैं। इन क्षेत्रों में विकास के लिए वहाँ के पर्यावरण को नुकसान पहुँचता है। ये क्षेत्र एक प्रकार से आधुनिक सुविधाओं से वंचित हैं ऐसे में वहाँ उन मूलभूत सुविधाओं तक पहुँचाने के लिए वहाँ के पर्यावरण को हानि पहुँचती है। ऐसे में विकास और पर्यावरण हानि का प्रश्न सामने आता है। कई बार इन क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों पर वहाँ के जनमानस का अधिकार नहीं होता है। यहाँ प्रश्न है कि अपने सामान्य उपभोग के अतिरिक्त उसका दोहन की स्थिति में वहाँ का विकास संभव नहीं हो सकता। अब ऐसे में इन क्षेत्रों में पर्यावरण से संबंधित बातों को प्रस्तुत करना बिना अर्थ का लगता है। दर्रा-दर्रा हिमालय में अजय सोडानी इसी स्थिति को बताते हैं- “शहरों में जो सुविधाएँ हमें सहज प्राप्य हैं। उनका सपना देखते-देखते ग्रामीणों की पीढ़ियाँ बदल जाती हैं। ऐसे में उन्हें पर्यावरण संरक्षण सम्बंधित हमारे भाषणों में कोई नज़र कैसे आ सकता है।”⁵ विकास और पर्यावरण संरक्षण की बहस में हम देखते हैं कि एक ओर यात्रा-साहित्यकारों में उसका संरक्षण वाला पक्ष प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर विकास का पक्ष भी प्रस्तुत किया है। पहाड़ी क्षेत्रों पर केन्द्रित हिंदी यात्रा-साहित्य बताता है कि जो सुविधाएँ समतल क्षेत्रों में होती हैं। उनको पहाड़ों में समृद्ध रूप में स्थापित करने के लिए वहाँ के पर्यावरण से छेड़-छाड़ करनी पड़ती है। पहाड़ों को काटना पड़ता है, पेड़ों को काटना पड़ता है। नदियों को रोक वहाँ बाँध बनाने पड़ते हैं ऐसे में यह विचार कि ऐसे न किया जाए उस क्षेत्र के विकास और वहाँ के जनमानस की जीवन को समृद्ध करने के बदले होगा। “जैसे काम पाने की संभावनाएँ तथा शिक्षा प्राप्त करने का अवसर। यह सब मुहैया करवाने के लिए प्रकृति से छेड़-छाड़ तो करनी ही पड़ेगी। सिर्फ यह कह देने भर से कि पेड़ मत काटो या बाँध न बनाओ, समस्या का हल नहीं हो सकता।”⁶ ऐसी स्थिति में सतत विकास की आवश्यकता और अधिक अनुभव होती है। आज पर्यटन स्थलों पर लोग घुमने-फिरने और आनंद मानने का कार्य करने के साथ वहाँ के पर्यावरण के प्रति असंवेदनशील होते हैं। कहीं भी कूड़ा डाल देना एक आम बात है। ऐसे में इन स्थानों पर सुरक्षा राशि लेनी पड़ती है जो इन स्थानों को कूड़ेदान होने से बचाती है। यानि एक आर्थिक नुकसान का दबाव बनाकर उस स्थान को साफ़ रखने का प्रयास करना पड़ता है। यह कार्य लोगों की स्वेच्छा से होना चाहिए। उसके लिए ऐसे दंड का प्रयोग करना बताता है कि लोग इस विषय में कितने उदासीन हैं। नीरज मुसाफ़िर अपने उत्तराखंड आधारित यात्रा-वृत्तांत ‘अनदेखे पहाड़’ में ऐसे ही एक क्षेत्र का वर्णन करते हैं। “500 रूपये कूड़ा न फैलाने की सुरक्षा राशि ली। बैग में प्लास्टिक का कितना सामान है, उनकी गिनती की और जाने दिया।”⁷

इस प्रकार हिंदी यात्रा-साहित्य में पर्यावरण विमर्श के कई पहलू मिलते हैं। जहाँ यात्रा-साहित्यकार ने अपने देखे समझे हुए को अपने वृत्तांत में व्यक्त किया है। आधुनिक दौर में विकास के नाम जिस प्रकार प्रकृति का अंधाधुंध दोहन हो रहा है, आवश्यकता के स्थान पर लालच की दृष्टि से प्रकृति का उपभोग किया जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि पर्यावरण के महत्त्व को जनसामान्य तक पहुँचाया जाए। प्रकृति के साथ मानव का सामंजस्य बैठाना एक आवश्यक कार्य है। सम्पूर्ण धरती पर पर्यावरण को किसी से हानि है तो वह निश्चित रूप से मनुष्य ही है, इसके अतिरिक्त सभी जीव-जंतु प्रकृति के साथ ताल-मेल बिठा कर चलते हैं। मनुष्य की इस प्रवृत्ति के कारण ही आज धरती से कई जीव सदैव के लिए लुप्त हो गये हैं तो कुछ संकटग्रस्त श्रेणी में हैं। सभी जीव-जंतुओं और प्रकृति से समन्वय स्थापित करके ही मनुष्य अपना विकास करे यह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए आवश्यक है। भौतिकवाद को कम करते हुए मानव को सतत विकास को अपनाना चाहिए। “अद्भुत! जो प्रकृति से प्रेम करेगा उसका खुश रहना तो स्वाभाविक है। और यही इनकी संतुष्टि की निर्भरता पैसे और भौतिक संसाधनों पर कम कर देता है।”⁸ इसके साथ ही पर्यावरण संरक्षण के लिए किए गये अभियानों एवं प्रयासों को धरातल पर उतारने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ:-

1. मुसाफिर, नीरज. सुनो लदाख: रेड्ग्रेब बुक्स, प्रथम संस्करण, 2017, पृष्ठ-143
2. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद : राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण, 2021, पृष्ठ-123
3. मुसाफिर, नीरज, अनदेखे पहाड़ : संभावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृष्ठ-176
4. सोडानी, अजय, दर्रा-दर्रा हिमालय : सार्थक प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 2019, पृष्ठ-112-113
5. वही, पृष्ठ-105
6. वही, पृष्ठ-104-105
7. मुसाफिर, नीरज, अनदेखे पहाड़ : संभावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृष्ठ-176
8. त्रिवेदी, पल्लवी, खुशदेश का सफर : सार्थक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2022, पृष्ठ-165

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी

डॉ. मकसूद खान

पल्लू, हनुमानगढ़ (राज.)

वैश्वीकरण एक अर्थ में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण है। वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के मध्य आया खुलापन, जुड़ाव तथा परस्पर निर्भरता को वैश्वीकरण की संज्ञा दी जाती है। इसके अंतर्गत विभिन्न देशों के मध्य पूंजी श्रम तकनीकी तथा सेवा का आदान प्रदान किया जाता है एवं व्यापार पर प्रतिबंधों को कम करने का प्रयास किया जाता है। वैश्वीकरण का उदय शीत युद्ध के अंत के पश्चात संचार क्रांति के परिणाम स्वरूप हुआ तथा इससे विश्व के विभिन्न देशों के मध्य सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों का विस्तार हुआ। समाजशास्त्री रोबर्टसन को ‘वैश्वीकरण का जनक’ माना जाता है। मैक्लुहान के अनुसार वैश्वीकरण के कारण पूरी दुनिया बेसिक गांव के रूप में परिवर्तित हो गई है, जबकि एंथोनी गिडेंस के अनुसार विभिन्न लोगों और दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के बीच में बढ़ती हुई पारस्परिकता ही वैश्वीकरण है। यह पारस्परिकता सामाजिक और आर्थिक संबंधों में होती है इसमें समय और स्थान सिमट जाते हैं। वैश्वीकरण इसलिए समय और स्थान की गति और गहनता से जुड़ा हुआ है। कुछ विचार एक ओर वैश्वीकरण को आर्थिक अवधारणा मात्र समझते हैं। उनके लिए यह उदारीकरण निजीकरण और निवेश हैं कुछ विचारक। इसे सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अर्थ में लेते हैं।

गिल्थिंग के शब्दों में वैश्वीकरण राजनीतिक कारणों की उपज है। बाजार ब्याज दर भौगोलिक गतिशीलता आदि समय और स्थान उतार-चढ़ाव के साथ जुड़े हुए हैं। यह जुड़ाव सहज नहीं है। आज का अंतरराष्ट्रीय माहौल कुछ ऐसा है जिसने राष्ट्र-राज्य अपने स्थायित्व और सुरक्षा के लिए किसी अंतरराष्ट्रीय मंच पर आने के लिए तैयार हैं। आज विश्व स्तर पर धारणा बनी है कि कुछ राष्ट्र-राज्य प्रभुत्वशाली कुछ सर्वोत्तम प्रभुत्वशाली यह राष्ट्र राज्य वैश्वीकरण के माध्यम से अपनी अर्थव्यवस्था और संस्कृति विकासशील राष्ट्र राज्यों पर थोपना चाहते हैं। आज वैश्वीकरण के दौर में देश के बीच की सीमा गायब हो रही है। आज समाज में होने वाली सारी गतिविधियों को वैश्वीकरण के संदर्भ में देखा जाता है तथा सतह रूप से तो वैश्वीकरण एक समान दिखता है जैसे शहरों की चमकीली सड़कें पांच सितारा होटल लेकिन उस क्षेत्र से जैसे ही दूसरे क्षेत्र में जाते हैं तो भयंकर अंतर दिखाई देता है अर्थात् छोटे क्षेत्र वैश्वीकरण की दौड़ से बाहर रहते हैं।

भारत ने 1991 से वैश्वीकरण की नीति को अपनाना प्रारंभ किया। वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने स्थानीय धंधों को व स्वदेशी उत्पादन का बड़ा नुकसान किया क्योंकि हमारे यहां सूचना समाज अभी ठीक ढंग से विकसित नहीं हुआ। हम तकनीकी क्षेत्र में भी पिछड़े हुए हैं जिससे दुनिया के विकसित देशों के बाजार में हमारा उत्पादन इस बाजार में टक्कर नहीं ले सकता है। परिणामस्वरूप हमारे ही स्थानीय बाजार में हम अपना उत्पादन नहीं बेच पाते हैं। स्थानीय कारखाने एक-एक करके बंद होने लगे तथा बेरोजगारी आसमान को छूने लगी भारत के संदर्भ में आर्थिक वैश्वीकरण का अर्थ उदारीकरण निजीकरण व्यापार आयात निर्यात से लिया जाता है। यह निश्चित है कि भारत में आर्थिक उदारीकरण में नर्क के दरवाजे खोले हैं। वैश्वीकरण का सीधा संबंध बाजार से जुड़ता है और बाजार का संबंध भाषा से जुड़ता है। इस प्रकार वैश्वीकरण के दौर में भाषा की स्थिति को समझने की जरूरत है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी सहित सभी भारतीय